# ध्यान: एक वैज्ञानिक दृष्टि

भगवान रजनीश

# ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि

●

भगवान रजनीश

●

संकलन :
मा योग क्रांति

संपादन :
स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन० शाह,
( साधु ईश्वर समर्पण )
मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र,
३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई – ६

●



●

आवरण सज्जाकार : श्री रामजी रायशी पीर

●

प्रथम संस्करण : जुलाई, १९७२

प्रतियां : ३०००

●

मूल्य : एक रुपया पचास पैसे
रु० १.५०

●

मुद्रक :
अशेष प्रिंटर्स,
७८१, राइट-टाउन,
जबलपुर
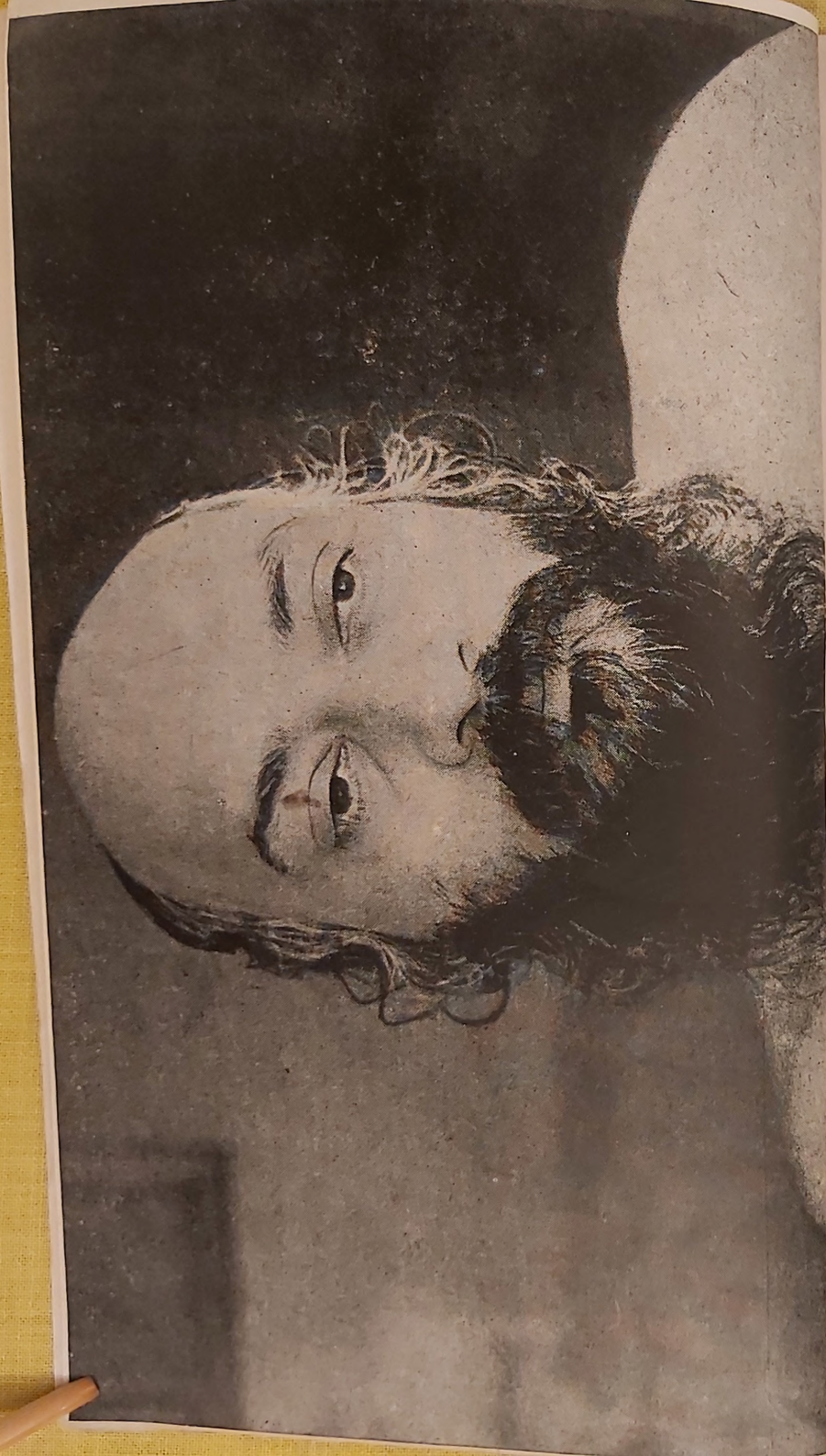
# ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि

दिनांक १८ जनवरी १९७१ की रात्रि षण्मुखानंद हाल, बंबई में 'ध्यान मंदिर अनुदान योजना' के अन्तर्गत आयोजित एक समारोह में भगवान् रजनीश द्वारा दिया गया एक प्रवचन ।

मेरे प्रिय आत्मन् !

सुना है मैंने कि कोई नाव उलट गई थी। एक व्यक्ति उस नाव में बच गया और एक निर्जन द्वीप पर जा लगा। दिन, दो दिन, चार दिन, सप्ताह, दो सप्ताह उसने प्रतीक्षा की कि जिस बड़ी दुनिया का वह निवासी था वहां से कोई उसे बचाने आ जाय। फिर महीने भी बीत गये और वर्ष भी बीतने लगा! फिर किसी को आते न देखकर वह धीरे-धीरे प्रतीक्षा करना भी भूल गया। पांच वर्षों के बाद कोई जहाज वहां से गुजरा। उस एकांत निर्जन द्वीप पर उस आदमी को निकालने के लिए जहाज ने लोगों को उतारा और जब उन आदमियों ने उस खो गये आदमी को चलने को कहा तो वह विचार में पड़ गया। उन लोगों ने कहा कि आप विचार कर रहे हैं! चलना है या नहीं? तो उस आदमी ने कहा, अगर तुम्हारे साथ कुछ अखबार हों, जो तुम्हारी दुनिया की खबर लाये हों, तो मैं पिछले दिनों के कुछ अखबार देख लेना चाहता हूं। अखबार देखकर उसने कहा, तुम अपनी दुनिया सम्हालो और अखबार भी। मैं जाने से इंकार करता हूं।

बहुत हैरान हुए वे लोग। उनकी हैरानी स्वाभाविक थी। पर वह आदमी कहने लगा, इन पांच वर्षों में मैंने जिस शांति, जिस मौन और जिस आनंद को अनुभव किया, वह मैंने पूरे जीवन के पचास वर्षों में भी (तुम्हारी उस बड़ी दुनिया में) कभी अनुभव नहीं किया था। और सौभाग्य और परमात्मा की अनुकम्पा कि उस दिन तूफान में नाव उलट गई और मैं इस द्वीप पर आ लगा। यदि मैं इस द्वीप पर न लगा होता, तो शायद मुझे पता भी न चलता कि मैं किस बड़े पागलखाने में पचास वर्षों से जी रहा हूं।

हम उस बड़े पागलखाने के हिस्से हैं। उसमें ही पैदा होते हैं, उसमें ही खड़े होते हैं, उसमें ही जीते हैं और इसलिए कभी पता भी नहीं चल पाता कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह सभी हमारे हाथ से चूक गया। और जिसे हम सुख कहते हैं और जिसे हम शांति कहते हैं, उसका न तो सुख से कोई सम्बन्ध है और न शांति से कोई सम्बन्ध है। और जिसे हम जीवन कहते हैं शायद वह मौत से किसी भी हालत में बेहतर नहीं है। लेकिन परिचय कठिन है। चारों ओर एक शोर-गुल की दुनिया है, चारों ओर शब्दों का, शोर-गुल का उपद्रवग्रस्त वातावरण है। उस सारे वातावरण में हम वे रास्ते ही भूल जाते हैं जो भीतर मौन और शांति में ले जा सकते हैं। इस देश में और इस देश के बाहर भी कुछ लोगों ने अपने भीतर भी एकांत द्वीप की खोज कर ली है।

न तो यह संभव है कि सभी की नावें डूब जायें, न यह संभव है कि इतने तूफान उठें, और न ही संभव है कि इतने निर्जन द्वीप मिल जायें जहां सारे लोग शांति और मौन को अनुभव कर सकें। लेकिन फिर भी यह संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर उस निर्जन द्वीप को खोज ले। ध्यान अपने ही भीतर उस उस निर्जन द्वीप की खोज का मार्ग है। यह भी समझ लेने जैसा है।

दुनिया में सारे धर्मों में विवाद हैं। सिर्फ एक बात के सम्बन्ध में विवाद नहीं है। और वह बात ध्यान है। मुसलमान कुछ और सोचते, हिन्दू कुछ और, ईसाई कुछ और, पारसी कुछ और, बौद्ध कुछ और। उन सबके सिद्धांत बहुत भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन एक बात के सम्बन्ध में इस पृथ्वी पर कोई भेद नहीं है। और वह यह कि जीवन के आनंद का मार्ग ध्यान से होकर जाता है। और परमात्मा तक अगर कोई भी कभी पहुंचा है तो ध्यान की सीढ़ी के अतिरिक्त और कोई सीढ़ी से नहीं। चाहे जीसस, चाहे बुद्ध, और चाहे मुहम्मद, और चाहे महावीर—कोई भी जिसने जीवन की परम धन्यता



को अनुभव किया है, उसने अपने ही भीतर गहरे डूब कर उस निर्जन द्वीप की खोज कर ली है।

इस ध्यान के विज्ञान के सम्बन्ध में दो-तीन बातें आपसे कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कि साधारणतः जब हम बोलते हैं तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर कौन-से विचार चलते हैं। ध्यान का विज्ञान इस स्थिति को (जब हम बोलते हैं तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था।) अत्यंत ऊपरी अवस्था मानता है। अगर एक आदमी न बोले तो हम पहचान भी न पायेंगे कि वह कौन है, क्या है। सुकरात ने किसी आदमी से मिलते वक्त कहा था कि तुम बोलो कुछ, तो मैं पहचान लूं कि तुम कौन हो। तुम न बोलो कुछ, तो पहचान मुश्किल है। इसलिए तो हम जानवरों को अलग-अलग नहीं पहचान पाते क्योंकि वे बोलते नहीं हैं। और मौन में सारी शकलें एक जैसी हो जाती हैं। शब्द हमारे बाहर प्रगट होता है तभी हमें पता चल जाता है कि हमारे भीतर क्या था।

ध्यान का विज्ञान कहता है कि यह अवस्था सबसे ऊपरी अवस्था है चित्त की। यह ऊपर की पर्त है। हम नहीं बोले होते हैं तब भी उसके पहले भीतर विचार चलता है, अन्यथा हम बोलेंगे कैसे। अगर मैं कहता हूं, 'ओम्', तो इसके पहले कि मैंने कहा, उसके पहले मेरे भी ओठों के पार और मेरे हृदय के किसी कोने में 'ओम्' का निर्माण हो जाता है।

ध्यान कहता है वह दूसरी पर्त है व्यक्तित्व के गहराई की। साधारणतः आदमी ऊपर की पर्त पर ही जीता है। उसे दूसरी पर्त का भी पता नहीं होता। उसके बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने का जगत् है, उसका भी उसे कुछ पता नहीं होता। काश! अगर हमें हमारे सोचने के जगत् का पता चल जाये तो हम बहुत हैरान हो जायें। जितना हम सोचते हैं उसका थोड़ा-सा हिस्सा वाणी में प्रकट होता है। ठीक ऐसे ही जैसे एक बर्फ के टुकड़े को हम पानी में डाल दें तो एक हिस्सा ऊपर हो जायेगा और नौ हिस्सा नीचे डूब जायेगा। हमारा भी नौ हिस्सा जीवन, विचार का, नीचे डूबा रहता है। एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आप क्रोध कर चुकते हैं, तब आप कहते हैं कि यह कैसे संभव हुआ! एक आदमी हत्या कर देता है, फिर पश्चात्ताप करता है। कहता है कि मैंने कैसे हत्या की! वह कहता है (इनस्पाइट आफ मी) मेरे बावजूद भी यह हो गया! मैंने तो कभी ऐसा करना ही नहीं चाहा था। उसे पता नहीं कि हत्या आकस्मिक

नहीं है। वह पहले भीतर निर्मित होती है। लेकिन वह तल गहरा है और उस तल से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।

ध्यान कहता है पहले तल का नाम **बैखरी** है। दूसरे तल का नाम **मध्यमा** है और उसके नीचे भी एक तल है जिसे ध्यान का विज्ञान **पश्यन्ति** कहता है। इसके पहले कि भीतर ओठों के पार हृदय के कोने में शब्द निर्मित हो......उससे भी पहले शब्द का निर्माण होता है। लेकिन उस तीसरे तल का तो हमें साधारणतः कोई पता नहीं होता। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे तक हम कभी-कभी झांक पाते हैं, तीसरे तक हम कभी नहीं झांक पाते।

ध्यान का विज्ञान कहता है कि पहला तल बोलने का है; दूसरा तल सोचने का है; तीसरा तल दर्शन का है। पश्यन्ति का अर्थ है देखना—जहां शब्द देखे जाते हैं। मुहम्मद कहते हैं कि मैंने कुरान देखी, सुनी नहीं। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमने ज्ञान देखा, सुना नहीं। मूसा कहते हैं कि मेरे सामने 'टेन कमांडमेंट्स' प्रगट हुए, दिखाई पड़े, मैंने सुने नहीं। यह तीसरे तल की बात है जहां विचार दिखाई पड़ते हैं, सुनाई नहीं।

तीसरा तल भी ध्यान के हिसाब से मन का आखिरी तल नहीं। चौथा एक तल है जिसे ध्यान का विज्ञान **परा** कहता है। वहां विचार दिखाई भी नहीं पड़ते, सुनाई भी नहीं पड़ते। और जब कोई व्यक्ति देखने और सुनने से नीचे उतर जाता है तब उस चौथे तल का पता चलता है। और उस चौथे तल के पार जो जगत है वह ध्यान का जगत् है। चार हमारी पर्तें हैं, इन चारों दीवालों के भीतर हमारी आत्मा है। हम बाहर की पर्तों के भी, दीवाल के बाहर ही जीते हैं। पूरे जीवन शब्दों की पर्त के साथ जीते हैं। और स्मरण नहीं आता कि खजाने बाहर नहीं हैं; बाहर सिर्फ रास्तों की धूल है।

आनन्द बाहर नहीं है। बाहर आनन्द की धुन भी सुनाई पड़ जाये तो बहुत है। **जीवन का सब कुछ भीतर है**—भीतर, गहरे अंधेरे में दबा हुआ। ध्यान वहां तक पहुंचने का मार्ग है। **पृथ्वी पर बहुत से रास्तों से उस पांचवीं स्थिति में पहुंचने की कोशिश की जाती रही है।** और जो व्यक्ति इन चार स्थितियों को पार कर के पांचवीं गहराई में नहीं डूब पाता उस व्यक्ति को जीवन तो मिला, लेकिन जीवन को जानने की उसने कोई कोशिश नहीं की। उस व्यक्ति को खजाने तो मिले, लेकिन खजानों से वह अपरिचित ही रहा और रास्तों पर भीख मांगने में समय बिताया। उस व्यक्ति के पास वीणा तो थी



जिससे संगीत पैदा हो सकता था, लेकिन उसने उसे कभी छुआ नहीं। उसकी उंगलियों का कभी कोई स्पर्श उसकी वीणा तक नहीं पहुंचा। हम जिसे सुख कहते हैं, धर्म उसे सुख नहीं कहता है। वह सुख है भी नहीं। हम भी भली-भांति जानते हैं कि हमारा सुख करीब-करीब ऐसा है।

मुझे एक छोटी-सी कहानी याद आती है। एक आदमी अपने मित्रों के पास बैठा है—बहुत बेचैन, बहुत परेशान। और ऐसा मालूम पड़ता है कि उसने भीतर कोई बहुत कष्ट, बहुत पीड़ा को दबाया हुआ है। अंततः एक मित्र उससे पूछता है : इतने परेशान हैं! बात क्या है ? सिर में दर्द है ? पेट में दर्द है ? उस आदमी ने कहा : नहीं, न सिर में दर्द है, न पेट में दर्द है। मेरे जूते बहुत काट रहे हैं। बहुत तंग हैं जूते। उस मित्र ने कहा कि जूतों को निकाल दें। और अगर इतने तंग जूते हैं कि परेशान कर रहे हैं, तो थोड़े ढीले जूते खरीद लें। उस आदमी ने कहा : नहीं, यह न हो सकेगा। मैं वैसे ही बहुत मुसीबत में हूं। पत्नी मेरी बीमार है और मैं जिस व्यक्ति को न चाहता था लड़की ने उससे शादी कर ली है। लड़का शराबी है, जुआरी है। और मेरी हालत दीवाले के करीब है। मैं वैसे ही बहुत दुख में हूं।

उन मित्रों ने कहा : आप पागल हैं। वैसे ही बहुत दुख में हैं तो जूते को तो बदल ही लें। उस आदमी ने कहा : इस जूते के साथ ही मेरा एक मात्र सुख रह गया है। तब तो वे बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा : यह सुख किस प्रकार है! उस आदमी ने कहा : मैं मुसीबतों में हूं। दिन भर यह जूता मुझे काटता है और शाम को जब मैं इस जूते को उतारता हूं तो मुझे बड़ी राहत मिलती है। एक ही सुख मेरे पास बचा है। शाम जब इस जूते को घर जाकर उतारता हूं तो बड़ी 'रिलीफ', बड़ी राहत मिलती है। बस, एक ही सुख मेरे पास है। और तो दुःख ही दुःख हैं। इस जूते को मैं नहीं बदल सकता हूं। जिसे हम सुख कहते हैं वह तंग जूते से ज्यादा सुख नहीं है। 'रिलीफ', से ज्यादा सुख नहीं है। **जिसे हम सुख कहते हैं वह थोड़ी देर के लिए किसी तनाव से मुक्ति है।** नकारात्मक है, निगेटिव है।

एक आदमी थोड़ी देर के लिये शराब पी लेता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी थोड़ी देर के लिए सेक्स में उतर जाता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी थोड़ी देर के लिए संगीत सुन लेता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी बैठकर गपशप कर लेता है, हंसी-

मजाक कर लेता है, हंस लेता है और सोचता है कि सुख में है। **ये सारे सुख तंग जूते को सांझ उतारने से भिन्न नहीं हैं।** इनका सुख से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सुख एक पॉजीटिव, एक विधायक स्थिति है, नकारात्मक नहीं। सुख छींक जैसा नहीं है कि आपको छींक आ जाती है और पीछे एक राहत मिलती है, क्योंकि छींक परेशान कर रही थी। सुख एक नकारात्मक चीज नहीं है लेकिन एक बोझ मन से उतर जाता है और पीछे अच्छा लगता है।

**सुख एक विधायक अनुभव है लेकिन बिना ध्यान के वैसा विधायक सुख किसी को अनुभव नहीं होता।** और जैसे-जैसे आदमी शिक्षित और सभ्य हुआ है, वैसे-वैसे ध्यान से दूर हुआ है। सारी सभ्यता, सारी शिक्षा आदमी को दूसरों से कैसे संबंधित हो यह तो सिखा देती है, लेकिन अपने से कैसे संबंधित हो यह नहीं सिखाती। समाज को कोई जरूरत भी नहीं है कि आप अपने से संबंधित हों। समाज चाहता है कि आप दूसरों से संबंधित हों—ठीक से, कुशलता से; तो बात पूरी हो जाती है। आप कुशलता से काम करें, बात पूरी हो जाती है।

समाज आपको एक फंक्शन ( उपादेय प्रक्रिया ) से ज्यादा नहीं मानता। अच्छे दूकानदार हों, अच्छे नौकर हों, अच्छे पति हों, अच्छी मां हों, अच्छी पत्नी हों, बात समाप्त हो गई। आप से समाज को कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए समाज की सारी शिक्षा उपयोगिता की है, यूटिलिटी की है। समाज सारी शिक्षा ऐसी देता है जिससे कुछ पैदा हो। **आनन्द से कुछ भी पैदा होता नहीं दिखाई पड़ता। आनन्द कोई कमोडिटी ( उपयोगी वस्तु ) नहीं है जो बाजार में बिक सके।** आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे रुपये में भंजाया जा सके। आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे बैंक बैलेन्स के रूप में जमा किया जा सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है जिसका कोई भी मूल्य हो—जिसकी समाज में कोई भी कीमत हो सके। इसलिए समाज को आनंद से कोई प्रयोजन नहीं है। और कठिनाई यही है कि **आनन्द भर एक ऐसी चीज है जो व्यक्ति के लिए मूल्यवान है,** बाकी कुछ भी मूल्यवान नहीं है। जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता जाता है, वैसे-वैसे यूटिलिटेरियन ( उपयोगितावादी ) होता जाता है। वह कहता है कि सब चीज की उपयोगिता होनी चाहिए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं : ध्यान से क्या मिलेगा ? शायद वे सोचते होंगे कि रुपये मिलें, मकान मिले, कोई पद मिले। **ध्यान से न पद**



**मिलेगा, न रुपये मिलेंगे, न मकान मिलेगा।** ध्यान की कोई उपयोगिता नहीं है। लेकिन जो आदमी सिर्फ उपयोगी चीजों की तलाश में घूम रहा है वह आदमी सिर्फ मौत की तलाश में घूम रहा है। जीवन की भी कोई उपयोगिता नहीं है।

**जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह परपजलेस ( प्रयोजन मुक्त ) है।** जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसकी बाजार में कोई कीमत नहीं है। प्रेम की कोई कीमत है बाजार में ? कोई कीमत नहीं है। आनन्द की कोई कीमत है ? कोई कीमत नहीं है। प्रार्थना की कोई कीमत है ? कोई कीमत नहीं है। ध्यान की, परमात्मा की इनकी कोई भी कीमत नहीं है। लेकिन जिस जिन्दगी में कोई अनुपयोगी ( नॉन-यूटिलिटेरियन ) मार्ग नहीं होता, उस जिन्दगी में **सितारों की चमक** भी खो जाती है। उस जिन्दगी में **फूलों की सुगंध** भी खो जाती है। उस जिन्दगी में **पक्षियों के गीत भी खो जाते हैं।** उस जिन्दगी में नदियों की दौड़ती हुई गति भी खो जाती है। उस जिन्दगी में कुछ भी नहीं बचता, **सिर्फ बाजार बचता है।** उस जिन्दगी में काम के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। उस जिन्दगी में तनाव और परेशानी और चिन्ताओं के सिवाय कुछ भी नहीं बचता।

जिन्दगी चिन्ताओं का एक जोड़ नहीं है। लेकिन हमारी जिन्दगी चिन्ताओं का एक जोड़ है। **ध्यान हमारी जिन्दगी में उस डायमेन्शन, उस आयाम की खोज है जहां हम बिना प्रयोजन के सिर्फ होने मात्र में ( जस्ट-बीइंग में ) आनंदित होते हैं।** और जब भी हमारे जीवन में कहीं से भी सुख की कोई किरण उतरती है तो वे, वे ही क्षण होते हैं जब हम खाली, बिना काम के समुद्र के तट पर या किसी पर्वत की ओट में या आकाश में तारों के नीचे या सुबह ऊगते सूरज के साथ, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के पीछे या खिले हुए फूलों के पास, कभी जब हम बिना काम, बिल्कुल बेकाम, बिल्कुल व्यर्थ, बाजार में जिसकी कोई कीमत न होगी—ऐसे किसी क्षण में होते हैं तभी हमारे जीवन में सुख की थोडी-सी ध्वनि उतरती है। लेकिन यह आकस्मिक ( एक्सिडेंटल ) होती है।

**ध्यान व्यवस्थित रूप से इस किरण की खोज है।** कभी होती है यह ट्यूनिंग ( सम-स्वरता )। विश्व के और हमारे बीच संगीत का स्वर बंध जाता है कभी, ठीक वैसे ही जैसे कभी कोई बच्चा सितार को छेड़ दे और कोई राग पैदा हो जाये आकस्मिक। **ध्यान व्यवस्थित रूप से जीवन में इस**

द्वार को बड़ा करने का नाम है, जहां से आनन्द की किरण उतरनी शुरू होती हैं, जहां से हम पदार्थ से छूटते हैं और परमात्मा से जुड़ते हैं।

मेरे देखे ध्यान से ज्यादा बिना कीमत की कोई भी चीज नहीं है। और ध्यान से ज्यादा बहुमूल्य भी कोई चीज नहीं है। और आश्चर्य की बात यह है कि यह जो ध्यान, प्रार्थना या हम कोई और नाम दें—यह इतनी कठिन बात नहीं है, जितनी लोग सोचते हैं। कठिनाई अपरिचय की है। कठिनाई न जानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जैसे हमारे घर के किनारे पर ही कोई फूल खिला हो और हमने खिड़की न खोली हो। जैसे बाहर सूरज खड़ा हो और हमारे द्वार बन्द हों। जैसे खजाना सामने पड़ा हो और हम आंख बंद किये बैठे हों— ऐसी कठिनाई है। अपने ही हाथ से अपरिचय के कारण कुछ हम खोये हुए बैठे हैं। जो हमें किसी भी क्षण हो सकता है। ध्यान प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता है। क्षमता ही नहीं प्रत्येक व्यक्ति का अधि-कार भी है। परमात्मा जिस दिन व्यक्ति को पैदा करता है, ध्यान के साथ ही पैदा करता है।

बच्चों में बूढ़ों से ज्यादा ध्यान होता है। इसलिए बच्चों की जिन्दगी में बूढ़ों से ज्यादा आनन्द की पुलक होती है, इसलिए बच्चों की आंखों में कुछ अलौकिक झलक होती है। बच्चे बोलते भी हैं तो जैसे मौन भीतर से बोलता है। बूढ़े बोलते भी हैं तो मौन से बचने के लिए।

जब दो आदमी पास बैठते हैं तो जल्दी से बात शुरू कर देते हैं, ताकि कहीं मौन न घेर ले, कहीं चुप्पी बीच में न आ जाय अन्यथा कठिनाई होगी। फिर उस मौन को तोड़ना कठिन पड़ेगा। अगर पति पत्नी से थोड़ी देर न बोले तो खतरा है। पति न बोले तो खतरा है। मौन थोड़ी देर आ जाय तो डर है, क्योंकि बीच में फिर मौन को तोड़ना बहुत मुश्किल हो जायेगा। फिर उसे पिघलाना मुश्किल होगा। इसलिए हम उसे आने ही नहीं देते। हम बोल-बोलकर मौन से बचते रहते हैं। बच्चे अगर बोलते हैं तो उनसे मौन बोलता है। बूढ़े अगर बोलते हैं तो सिर्फ मौन से एक एस्केप, एक पलायन होता है। लेकिन हम बच्चों को जल्दी बूढ़े बनाने की कोशिश में लग जाते हैं। जब तक वे बच्चे रहते हैं तब तक भरोसे के योग्य नहीं रहते। जब तक वे बच्चे रहते हैं तब तक हमारी काम की दुनिया के हिस्से नहीं रहते। हम शीघ्र ही जो हमें परमात्मा से मिला है उसे तोड़ने-मोड़ने और अपने रास्तों पर लगाने में तत्पर हो जाते हैं। इसके पहले कि बच्चा जान पाये कि



क्या उसके पास था हम उसे करीब-करीब उससे अपरिचित कर देते हैं। और उससे परिचित कर देते हैं जिससे वह जिन्दगी भर परिचित रहेगा। और वह अपनी निजी संपदा से अपरिचित रह जायेगा।

ध्यान हमारा स्वभाव है। उसे हम जन्म के साथ लेकर पैदा होते हैं। और इसलिए बाद में ध्यान से परिचित होना कठिन नहीं है। ध्यान कुछ है जो हमारा है, जिसे हम केवल भूल गये हैं। जिसे विस्मरण किया है उसे हम पुनः याद कर सकते हैं। पुनर्स्मरण से ज्यादा नहीं है ध्यान—एक रिमेम्बरिंग। कुछ था हमारे पास जिसे हम भूल गये हैं, उसे हम पुनः याद कर सकते हैं। इसलिए कठिन नहीं है ध्यान। और प्रत्येक व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट हो सकता है।

ध्यान मंदिर से एक ऐसे स्थान का प्रयोजन है जहां किसी भी धर्म का, किसी भी मार्ग का और किसी भी तरह से सोचने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक रूप से, साइंटीफिक विधि से ध्यान से परिचित हो सके और ध्यान में प्रवेश कर सके। इतना ही नहीं वरन् वहां वह ध्यान के मार्ग पर जो बाधायें हैं, उनसे वैज्ञानिक ढंग से परिचित हो सके। और ध्यान रहे मैं जोर देकर कह रहा हूं—"वैज्ञानिक ढंग से"। क्योंकि मंदिरों की कोई कमी नहीं है। मस्जिदों की कोई कमी नहीं है, गुरुद्वारे बहुत हैं। लेकिन गुरुद्वारों की, मंदिरों की, मस्जिदों की भाषा और आज के आदमियों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।

ऐसा नहीं है कि मंदिर जो बोलते हैं वह गलत बोलते हैं। और ऐसा भी नहीं कि मस्जिदों में जो कहा जाता है वह गलत है। और ऐसा भी नहीं कि गुरुद्वारा जो संदेश देने बैठा है वह गलत है। वे संदेश सब ठीक हैं, लेकिन भाषा उनकी इतनी पुरानी पड़ गयी है कि उससे आज के आदमी का कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। आज कोई संबंध हो भी नहीं सकता। आज के आदमी की सारी शिक्षण की व्यवस्था वैज्ञानिक है। और मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों के सोचने के सारे ढंग पूर्व-वैज्ञानिक हैं, प्री-साइंटीफिक उनसे आज के आदमी का कहीं भी कोई तालमेल नहीं है।

ध्यान केन्द्र से या ध्यान मंदिर से मेरा प्रयोजन है वैज्ञानिक विधियों से, वैज्ञानिक व्यवस्था से आधुनिक आदमी के मन को ध्यान से न केवल बौद्धिक रूप से परिचित कराया जा सके बल्कि प्रयोगात्मक (एक्सपेरिमेंटल) रूप से

भी उसे ध्यान में प्रवेश दिया जा सके। और बौद्धिक रूप से ध्यान से परिचित होना बहुत कठिन है, प्रयोगात्मक रूप से परिचित होना बहुत सरल है।

कुछ चीजें हैं जिन्हें हम करके ही जान सकते हैं। जिन्हें हम जानकर कभी नहीं कर सकते। असल में उन्हें हम जान ही नहीं सकते जब तक कि हम कर न लें। ध्यान-मंदिर एक वैज्ञानिक व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आज भी आधुनिक भाषा एवं प्रतीकों में ध्यान के विषय में समझ पा सके और न केवल समझ पा सके बल्कि कर भी सके, और ध्यान से परिचित भी हो सके।

इसमें दो-तीन बातें खयाल में ले लेने जैसी हैं। कई बार बहुत छोटी-सी चीजें हमारे खयाल में नहीं होतीं। डॉ० पर्ल्स एक अमरीकन मनोवैज्ञानिक है जिसने एक बहुत छोटी-सी बात पर जिन्दगी भर प्रयोग किया है। एक बहुत छोटी बात, जिसका हमें खयाल भी नहीं हो सकता। उसका कहना है कि जो आदमी भोजन ठीक से चबाकर नहीं करता उस आदमी की जिंदगी में हिंसा ज्यादा होगी, वह व्हायलेंट होगा। जो आदमी जिंदगी में भोजन ठीक से चबाकर करता है उसकी हिंसा कम हो जायेगी। बहुत अजीब-सी बात मालूम होती है। चबाने से और हिंसा का क्या सम्बन्ध हो सकता है! लेकिन पर्ल्स की तीस साल की खोज यही है कि सभी जानवर हिंसा करते हैं, जब भी हिंसा करते हैं तो दांत से ही करते हैं। आदमी की भी हिंसा उसके दांतों में केंद्रित है। लेकिन आदमी ने जो भोजन विकसित किए हैं उनमें उतनी हिंसा नहीं हो पाती। इसलिए उसके दांत की हिंसा उसके पूरे शरीर में फैल जाती है।

पर्ल्स ने पिछले अनेक वर्षों में जो व्हायलेंट थे, पागल थे, जो हिंसा के बिना किये रह नहीं सकते थे उनको सिर्फ भोजन ठीक से चबाने का प्रयोग करवाया और पाया कि तीन महीने के प्रयोग में जो आदमी बिना चीजों को तोड़े-फोड़े नहीं रह सकता था, जो आदमी किसी न किसी को मारे बिना नहीं रह सकता था उस आदमी की हिंसा तिरोहित हो गई।

पर्ल्स ने फिर दांत, हिंसा और मनुष्य के व्यक्तित्व की वैज्ञानिक आधारों पर खोजबीन की और उसकी बात बहुत दूर तक सच साबित हुई। आप प्रयोग करके देखें तो खयाल में आयेगा। एक पन्द्रह दिन भोजन को इतना चबायें कि जब तक वह लिक्विड (तरल) न हो जाये तब तक उसको भीतर न ले जायें। और चौबीस घंटे आप स्मरण करें कि आपकी हिंसा में रोज फर्क पड़ता है या नहीं पड़ता है। और आप इक्कीस दिन के प्रयोग के बाद दंग हो



जायेंगे कि आपके क्रोध में फर्क हो गया है। अब क्रोध के लिए कुछ भी सीधे नहीं करना पड़ा है। करना पड़ा है कहीं और। और अगर आप सीधे क्रोध के लिए कुछ करेंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्रोध दब जायेगा एक तरफ से तो दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जायेगा।

आपको कभी क्रोध आ जाय जोर से तो एक प्रयोग करें। अपनी टेबिल के नीचे दोनों हाथ बांधकर नाखूनों को अपनी ही हथेली में जोर से गड़ा लें फिर तीन बार मुट्ठी जोर से भीचें और खोलें और फिर क्रोध करके देखें। आप बहुत हैरान हो जायेंगे कि तीन बार मुट्ठी को खोलने और बन्द करने में ताकत खो गई जिससे आप क्रोध कर सकते थे। असल में नाखून और दांत हिंसा के केन्द्र हैं। सारे जानवर नाखून और दांतों से हिंसा कर रहे हैं। और चूंकि आदमी के पास दांत कमजोर थे, नाखून कमजोर थे इसलिए उसने हथियार बनाये जिससे उसने दांतों और नाखूनों का काम लिया। अगर हम आदमी के सारे हथियारों को देखें तो हम पायेंगे कि वे या तो दांत के विस्तार हैं या नाखून के।

ध्यान केन्द्र पर मैं इस तरह की सारी की सारी वैज्ञानिक व्यवस्था करना चाहता हूं जहां आपकी हिंसा, आपका क्रोध, आपकी चिन्ता, आपका तनाव, आपकी अनिद्रा आपके चित्त पर आने वाले विकार क्यों पैदा होते हैं, कैसे पैदा होते हैं, इसे आप समझ सकें। वे आपको पैदा करके भी बताये जा सकें और वे कैसे विदा होते हैं वह भी आपसे ही विदा करवाकर बताया जा सके।

यह नकारात्मक हिस्सा होगा ध्यान का कि आप में जो व्यर्थ का कचरा इकट्ठा है कैसे अलग हो सके। और फिर विधायक रूप से मैंने जो चार सीढ़ियां कहीं : बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा—इन चार सीढ़ियों में आपको भीतर कैसे उतारा जा सके, आप इनमें भीतर कैसे उतर जायें इसकी व्यवस्था भी वहां रहेगी। एक बार बाहर का कचरा फिक जाए तो भीतर उतर जाना बड़ी ही सरल बात है। यह बहुत कठिन नहीं है। शायद हम इस जिंदगी में फिजूल की बातें सीखने में जितना समय नष्ट करते हैं उससे बहुत कम समय में ध्यान में गति शुरू हो जाती है।

एक आदमी नर्क जाने के लिए जितनी मेहनत उठाता है उससे बहुत कम मेहनत में स्वर्ग पा सकता है। हम क्रोध के लिए जितना श्रम करते हैं उससे बहुत कम श्रम में ध्यान में उतर सकते हैं। हम दूसरे के साथ लड़कर

जितना श्रम करते हैं उतना अगर अपने को बदलने में करें तो हम कभी के अपने भीतर परमात्मा की प्रतिमा को खोजने में सफल हो जायें। हम बाहर के रास्तों पर जितना दौड़ते हैं अगर उससे सौवां हिस्सा भी हम भीतर के रास्ते पर जायें तो हम अपने पास पहुंच जायें। और **जो आदमी अपने पास नहीं पहुंचता वह बाहर कितना ही दौड़े वह कहीं भी नहीं पहुंचेगा**। जो अपने तक ही नहीं पहुंच पाया वह कहीं और नहीं पहुंच सकता है। और जिसे अपने भीतर शांति का कोई संगीत नहीं मिला, वह बाहर जगत के कोने-कोने में घूम आये, उसे नरक के अतिरिक्त कुछ भी मिलने वाला नहीं है। हम अपना नर्क या अपना स्वर्ग अपने साथ लेकर चलते हैं।

इस ध्यान मंदिर को एक वैज्ञानिक व्यवस्था देनी है --साम्प्रदायिक जरा भी नहीं, किसी धर्म से बंधा हुआ जरा भी नहीं और सब धर्मों के लिए खुला हुआ इसे बनाना है। **और प्रत्येक धर्म ने ध्यान के जो अलग-अलग प्रयोग खोजे हैं, उनकी भी क्या वैज्ञानिकता है उसका भी प्रयोग करने का उस केन्द्र में खयाल है।**

कोई एक सौ बारह विधियां हैं सारे जगत् में ध्यान की और प्रत्येक विधि अद्भुत है। और **११२ विधियों से आदमी परमात्मा तक पहुंच सकता है।** उसमें एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत विधियां भी हैं। इसलिए एक विधि को मानने वाला दूसरी विधि को बिल्कुल गलत कहता है, लेकिन वे ११२ विधियां सभी व्यक्तियों को ध्यान और शांति और आनन्द और सत्य तक ले जाने का मार्ग बन जाती हैं।

**इस ध्यान मंदिर में पूरी ११२ विधियों का प्रयोग करने का खयाल है।** और तब पहली बार पृथ्वी पर उस तरह का प्रयोग होगा जिसमें आज तक पृथ्वी पर आविष्कृत ध्यान की क्रियाओं को एक साथ, एक जगह पर हम उपलब्ध करा सकेंगे। हम एक भी व्यक्ति को वहां खोना न चाहेंगे। वह किसी भी मार्ग से परमात्मा तक जा सके, उसी मार्ग पर ही उसे सुझाव दिये जा सकेंगे।

अजीब-अजीब विधियां हैं ध्यान की, जिनका आपने कभी नाम भी न सुना होगा। एक दो विधि मैं आपसे कहना चाहूंगा। **तिब्बत में एक बहुत छोटी-सी विधि है : बैलेंसिंग, संतुलन** उस विधि का नाम है। कभी घर में खड़े हो जायें सुबह स्नान करके। दोनों पैर फैला लें और खयाल करें कि आपके दायें पैर पर ज्यादा जोर पड़ रहा है कि बायें पैर पर जोर पड़ रहा



है। अगर बायें पर पड़ रहा है तो फिर आहिस्ते से जोर को दायें पैर पर ले जायें। दो क्षण दायें पैर पर जोर रखें फिर बायें पर ले जायें। एक पन्द्रह दिन सिर्फ शरीर का भार बायें पर है कि दायें पर इसको बदलते रहें। और यह तिब्बती प्रयोग कहता है कि फिर इस बात का प्रयोग करें कि दोनों पर **भार न रह जाये और आप दोनों पैर के बीच में रह जायें**। और एक तीन सप्ताह का प्रयोग और जब आप बिल्कुल बीच में होंगे—भार न बायें पर होगा न दायें पर होगा—**जब आप बिल्कुल बीच में होंगे**, तब आप ध्यान में प्रवेश कर जायेंगे। **ठीक उसी क्षण में आप ध्यान में चले जायेंगे।**

ऊपर देखने पर लगेगा इतनी-सी आसान बात ! करेंगे तो आसान भी मालूम पड़ेगी और कठिन भी मालूम पड़ेगी। बहुत सरल मालूम पड़ती है। दो पंक्तियों में कही जा सकती है। **लेकिन लाखों लोग इस छोटे से प्रयोग के द्वारा परम आनंद को उपलब्ध** हुए हैं। जैसे ही आप बैलेंस्ड होते हैं—न बायें पर रह जाते, न दायें पर रह जाते, दोनों के बीच में रह जाते हैं वैसे ही आप पाते हैं कि वह बैलेंसिंग (संतुलन) आपकी कांशसनेस का, आपकी चेतना का भी हो गया। चेतना भी बैलेन्स्ड हो गयी, चेतना भी संतुलित हो गयी। और तब तत्काल तीर की तरह भीतर गति हो जाती है।

ऐसी एक सौ बारह विधियां हैं सारे जगत् में। इन सारी ११२ **विधियों पर विस्तृत वैज्ञानिक व्यवस्था ध्यान केन्द्र में देना चाहता हूं।** और न केवल आपको समझाया जा सके बल्कि आपको करवाया भी जा सके। **अगर एक विधि से न हो सके तो दूसरी विधि से करवाया जा सके। लेकिन हम उस मंदिर से आपको निराश न लौटने दें।** क्योंकि ११२ ये चरम विधियां हैं, इससे ज्यादा हो नहीं सकतीं। अगर एक विधि काम नहीं करती तो दूसरी करेगी। दूसरी नहीं करती तो तीसरी करेगी। और आपकी विधि तत्काल खोज ली जा सकती है कि कौन-सी विधि आप पर काम करेगी। आप पर कौन-सी विधि काम करेगी इसके खोजने का भी साइंस है, इसके खोजने का भी विज्ञान है।

यदि हम इस समय देश के बड़े-बड़े नगरों में और देश के बाहर भी ध्यान के ऐसे वैज्ञानिक मंदिर निर्मित कर सकें तो मनुष्य जाति के लिए—जो आज सर्वाधिक पीड़ा और संताप से गुजर रही है और जिसे कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता है, हम एक मंगलदायी दिशा देने में सफल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो-जो हमने सोचा था कि इससे सब ठीक हो जायेगा, उससे कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। सोचा था कि लोगों के पास भोजन ठीक होगा तो सब

ठीक हो जायेगा। आज आधी दुनिया के पास भोजन बिल्कुल ठीक है, लेकिन इससे कुछ हल नहीं हो सका है। सोचा था कि लोगों के पास कपड़े होंगे, मकान होंगे, अच्छे रास्ते होंगे, दवा होगी, चिकित्सा होगी, बीमारी कम होगी तो हम शान्त व आनंदित हो जायेंगे। आज आधी दुनिया के पास सब कुछ है, लेकिन शांति व आनंद का कहीं भी दर्शन नहीं होता है।

एक बड़ी अद्भुत घटना घटी है कि जिनके पास सब है वे ही सर्वाधिक अशान्त, बेचैन और परेशान हो गये हैं। गरीब मुल्क एक अर्थ में सौभाग्यशाली है। क्योंकि अभी उनकी आशा जीवित है। उन्हें खयाल है कि समाजवाद आयेगा। धन बढ़ेगा, धन बटेगा तो सब ठीक हो जायेगा यह आशा भी उन मुल्कों की टूट गई जहां यह सब ठीक हो गया है। अब वे गहन निराशा में खड़े हो गये हैं। **इतनी होपलेसनेस, इतनी आशारहितता कभी भी मनुष्य के इतिहास में पैदा नहीं हुई थी।**

आज अमेरिका जितना आशाहीन है उतना पृथ्वी पर कोई भी नहीं और आज अमेरिका मनुष्य के इतिहास में सर्वाधिक सम्पन्न, सर्वाधिक सुखी है। हमारे अर्थों में सब कुछ उसके पास है और फिर भी उसे ऐसा अनुभव हो रहा है कि जैसे कुछ भी पास नहीं है। इतनी आशाहीन स्थिति का कारण एक है। जो हमने सोचा था कि जिन बातों से जीवन में आनन्द मिलेगा वह सब डिसइल्यूजन्ड हो गया, वे सब भ्रम टूट गये। **और अब हमें वापिस लौट-कर सुनना पड़ेगा बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को** क्योंकि उन्होंने बहुत-बहुत बार, बहुत पहले यह कहा था कि अगर सब भी मिल जाये मनुष्य को लेकिन अगर स्वयं का अनुभव न मिले तो कुछ भी मिलता नहीं है। लेकिन हमें उनकी बात खयाल में नहीं आ सकी। नहीं आ सकती थी क्योंकि बात बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती थी, बहुत यूटोपियन मालूम पड़ती थी। और जो लोग कहते थे कि धन मिल जाये, मकान मिल जाये उनकी बात बड़ी प्रेक्टिकल और व्यवहारिक मालूम पड़ती थी। इतिहास का यह बड़ा मजाक है कि जो लोग बहुत प्रेक्टिकल थे वे बहुत यूटोपियन सिद्ध हुए और जो लोग बहुत यूटोपियन थे वे ही आज पृथ्वी पर सबसे ज्यादा प्रेक्टिकल सिद्ध होने के करीब हैं।

**लेकिन धर्म अब पुराने रास्तों से नहीं लौटाया जा सकता।** अब धर्म नये ही रास्तों से प्रवेश करेगा। उसके नये रास्ते वैज्ञानिक और तकनीकी होंगे। अब जैसे एक आदमी हिमालय जाता था। आज भी हम सोचते हैं कि



एक आदमी हिमालय जाये तो ध्यान में जा सकता है। कभी हमने सोचा नहीं कि हिमालय किसलिए जाता था। **जितना ताप कम हो जाये वातावरण में उतना भीतर प्रवेश आसान होता है।** लेकिन कितने लोग हिमालय जा सकते हैं! लेकिन बम्बई में ही एक एयर कंडीशन्ड मेडिटेशन हॉल (वातानुकूलित ध्यान मंदिर) हो सकता है। अब हिमालय जाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हिमालय पर जो ठंडक मिल सकती है, वह बम्बई में भी उपलब्ध हो सकती है। अब हिमालय पर जाना व्यर्थ की दौड़धूप है। **अब तो ठीक बंबई के बीच बाजार में भी उतनी ही शीतलता उपलब्ध हो सकती है जितनी एक योगी को हिमालय की चोटी पर उपलब्ध होती है।** उसके आस-पास भी बर्फ फैलाया जा सकता है—अगर बर्फ से ही कुछ लाभ होना है तो बर्फ फैलाया जा सकता है। अगर ऊंचाई से कुछ लाभ होता हो, जमीन के ग्रेव्हिटेशन (गुरुत्वाकर्षण) के कम होने से कुछ लाभ होता हो तो **बम्बई में भी ग्रेव्हिटेशन कम किया जा सकता है।** अगर मौन से लाभ हो सकता है तो **बम्बई में भी साउंडप्रूफ इन्तजाम किये जा सकते हैं।** और अधिकतम लोगों के लिए हिमालय की चोटी संभव नहीं है और अगर अधिक लोग पहुंच जायें तो हिमालय की बर्फ भी पिघल जायेगी। अधिक लोग वहां नहीं पहुंचे हैं तभी तक वह उपयोगी है। अधिक लोग वहां पहुंच जायें तो वहां भी इतना ही उत्ताप पहुंच जायेगा, इतनी ही गर्मी पहुंच जायेगी। एवरेस्ट पर जिस दिन जाने का रास्ता सीधा होगा उस दिन हम बस्तियां वहां भी बसा लेंगे।

आने वाले भविष्य में मनुष्य जहां है वहीं सारी टेक्नोलॉजी और साइंस का उपयोग किया जा सकता है। और वहीं सारी व्यवस्था की जा सकती है, जो कि एक योगी को बड़ी तकलीफें उठाकर व्यवस्था करना पड़ती थी। यह विज्ञान के द्वारा संभव हो गया है। एक सामान्य आदमी के लिए भी यह सब सुलभ हो सकता है।

अब विज्ञान का उपयोग करके ही, **टेक्नोलॉजी का पूरा उपयोग करके ही इस ध्यान के मंदिर को निर्मित करना है।** ध्यान का मंदिर सिर्फ इसी अर्थ में मंदिर होगा कि वह ध्यान का, परमात्मा का द्वार होगा; अन्यथा वह एक वैज्ञानिक प्रयोग शाला होगी। **इस वैज्ञानिक प्रयोग शाला में मनुष्य ने जो-जो खोजें की हैं आदमी के सम्बन्ध में उसका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।**

एक आदमी ध्यान करने आता है, लेकिन उसका ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) बढ़ा हुआ है। इस आदमी को ध्यान में ले जाना आसान नहीं है।

इसको ध्यान में ले जाना कठिन है। इसके रक्तचाप की जो अधिकता है वह उसके ध्यान में बाधा बनेगी। पुराने आदमी के पास रक्तचाप को नापने का कोई माध्यम नहीं था। लेकिन आज के ध्यान मंदिर में रक्तचाप नापने का माध्यम हो सकता है, रक्तचाप को कम करने की व्यवस्था हो सकती है। और फिर ध्यान में ले जाने की सुविधा बनाई जा सकती है। **एक बार आदमी ध्यान में चला जाये तो रक्तचाप में जाना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन रक्तचाप में** डूबे हुए आदमी का ध्यान में जाना मुश्किल होगा।

सारी दुनिया के योगियों ने अल्प आहार पर जोर दिया है, कम खाने पर जोर दिया है। उपवास पर, अल्प-आहार पर, कम भोजन पर, सम्यक् आहार पर सारी दुनिया के योगियों ने जोर दिया है फिर भी उनके पास अल्प-आहार क्या है इसकी ठीक-ठीक जांच की कोई व्यवस्था नहीं थी, सिवाय अनुमान के। न उन्हें कैलोरीज का कुछ पता था, न उन्हें भोजन के तत्वों का कुछ पता था। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि अल्प-आहार के नाम पर जो चला उससे नुकसान ही पहुंचा। आज हमारे पास बहुत वैज्ञानिक व्यवस्था है कि हम जान सकें कि एक आदमी को कितनी कैलोरी भोजन की जरूरत है। **और हम यह तय कर सकते हैं कि उसकी कितनी कैलोरी कम हो जाये तो उसे ध्यान में आसानी हो जायेगी** और कितनी कैलोरी ज्यादा हो जाये तो कठि–नाई हो जायेगी।

**जैसे अगर ज्यादा भोजन लें तो ध्यान में कठिनाई हो जायेगी।** क्योंकि ज्यादा भोजन नींद मांगता है। उसे पचाने के लिए उतनी ज्यादा नींद चाहिए। कम भोजन कम नींद मांगता है और **जितनी भीतर निद्रा कम पैदा होती हो उतना ध्यान का जागरण पैदा हो सकता है।** ध्यान तो जागरण है। एक आदमी ध्यान करने बैठता है और ज्यादा भोजन करके बैठ जाता है तो फिर कठिनाई होगी। लेकिन ज्यादा भोजन से मतलब सिर्फ पेट में ज्यादा चीजें चली जायें इससे नहीं है। क्योंकि हो सकता है एक आदमी ने बहुत शाक-सब्जी खा ली हो। पेट पर तो भोजन सम्यक् मात्रा में हो लेकिन पेट पर वजन ज्यादा न हो। और एक आदमी ने थोड़ी-सी ही मिठाई खाई हो तो पेट पर तो वजन कम है, लेकिन भोजन ज्यादा हो गया हो। और आमतौर से साधु-संन्यासी मिठाई खाते रहे, दूध पीते रहे, रबड़ी लेते रहे हैं, इस बात का बिना खयाल किये कि वह भारी सिद्ध होगा। लेकिन उसका कोई उपाय



नहीं था। उस समय कैलोरी का साफ खयाल नहीं था। आज हमारे पास सब उपाय हैं।

एक आदमी कितना सोए इस पर निर्भर करेगा कि उसकी ध्यान में गति कैसी होगी। दोनों बातें संबंधित हैं। अगर ध्यान ठीक हो जाये तो नींद ठीक हो जायेगी। लेकिन ध्यान को ठीक करना उतना आसान नहीं जितना नींद को ठीक कर लेना आसान है। **पहले नींद ठीक कर ली जाय तो ध्यान में गति बहुत आसान हो जाये।** अब लोगों के पास नींद ही नहीं है। रात ठीक से सोये नहीं, सुबह ध्यान करने बैठ गये! तो जो आदमी रात भर ठीक से सोया नहीं है वह ध्यान में सिर्फ सोयेगा। इसलिए मंदिरों में पूजा करते हुए, साधु को सुनते हुए लोग अगर सो जाते हैं तो बहुत हैरानी नहीं है। मैंने सुना है कि डॉक्टर सलाह देते हैं कि धर्म-सभा में चले जाना चाहिए अगर नींद न आती हो तो।

मैंने सुना है एक बहुत बड़ा पादरी अपने एक मित्र को बार-बार कहता था कि तुम कभी मेरा व्याख्यान सुनने आओ। पादरी नहीं माना तो एक दिन वह मित्र सुनने गया। पादरी अच्छे से अच्छा जो बोल सकता था वह बोला। दोनों बाहर जब निकलने लगे तो पादरी ने अपने मित्र से पूछा कि व्याख्यान कैसा लगा। मित्र ने कहा कि बहुत ही ताजगी देनेवाला (रिफ्रेशिंग)। पादरी के हृदय की धड़कन खुशी से बढ़ गई है। उसने कहा: कौन-सी बात तुम्हें इतनी ताजगी देने वाली लगी? उसने कहा: व्याख्यान के बाद जब मेरी नींद खुली तो मेरा मन बड़ा ताजा था। इतनी ताजगी तो जब मुझे घर नींद आती है तब भी नहीं मिलती। तो मैं जरूर आया करूंगा। तुम्हारा भाषण बहुत रिफ्रेशिंग था।

आखिर मंदिरों में, धर्म-कथाओं में आदमी को नींद क्यों आ जाती है? आखिर बात क्या है! बोर्डम (ऊब) पैदा हो जाये तो नींद आ जाती है। **कोई चीज उबाने लगे तो नींद आ जाती है।** और नींद की कमी हो तो जल्दी ही कोई चीज उबाने लगती है।

जिनको नींद नहीं आती, वे मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि हमें नींद नहीं आती। ध्यान से शायद नींद आ जाय? उन्हें पता नहीं कि **ध्यान से नींद जरूर ठीक हो जायेगी, लेकिन नींद का ठीक होना ध्यान में जाने के पहले बहुत जरूरी है।** अन्यथा ध्यान में जाना मुश्किल हो जायगा। कठिन इसलिए हो जायगा **किचित्त की पहली जरूरत नींद की है।** और जैसे ही विश्राम

मिला, चित्त सो जायगा। और ध्यान में जरूरत है **विश्राम में भी जागे हुए** होने की—रिलेक्स्ड एण्ड अवेयर। एक तरफ कोई ध्यान में प्रवेश कर सकता है। और नींद का नियम यह है कि यहां हम विश्राम में हुए बाहर और भीतर नींद आ गई। रिलेक्स हुए कि नींद आ गई। तो ध्यान में अक्सर लोग सो जायेंगे।

अब यह सारी व्यवस्था आज की जा सकती है : अनिद्रा दूर की जा सकती है। नींद नापी जा सकती है। सपने नापे जा सकते हैं कि कितने सपने आपको आ रहे हैं। आपको ही नहीं पता होता कितने सपने आ रहे हैं। कैसे सपने आ रहे हैं।

कल ही एक साधिका मेरे पास थी। ध्यान करना है उसे। मैंने उसके सपनों के बाबत पूछा। उसने कहा कि सपनों से क्या मतलब आपको ! मुझे ध्यान करना है। मैंने उससे कहा, मुझे पूछना बहुत जरूरी है क्योंकि **सपने ही मुझे बतायेंगे कि तुम्हें ध्यान करना है या कुछ और करना है।** उसने कहा कि सपने में तो मुझे सिर्फ काम-वासना के और हिंसा के, आग लगा देने के (इस तरह के) सपने आते हैं। तो मैंने कहा, "वही तुम्हारा चित्त करना चाहता है। अभी ध्यान मुश्किल पड़ेगा। **पहले तो तुम्हारे सपनों को शुद्ध करना पड़ेगा।**" जिस व्यक्ति को स्वयं को शुद्ध करना है वह अगर अपने सपनों को भी शुद्ध न कर पाये तो स्वयं को शुद्ध न कर पायेगा। सपने जैसी साधारण चीज भी अशुद्ध हो तो उसकी सत्ता ( आत्मा ) शांत हो जाये यह अभी बहुत मुश्किल है। लेकिन आज से पहले सपनों के जांचने की कोई सुविधा न थी।

**इस ध्यान केन्द्र में सपनों के जांचने की पूरी व्यवस्था करना चाहता हूं।** अब तो इसकी पूरी वैज्ञानिक सुविधा है। जैसे आपका कार्डियोग्राफ लिया जाता है, वैसे रात में आपके सपने का ग्राफ बनाया जा सकता है कि आपने कितनी देर सपने देखे, किस प्रकार के सपने देखे। सपने व्हायलेंट (हिंसक) थे या नान व्हायलेंट (अहिंसक) थे, सेक्सुअल (कामुक) थे या नहीं थे, **सपने किस तरह के थे इसकी काफी जानकारी ग्राफ दे देता है।** कितने सपने देखे रात भर यह भी ग्राफ बता देगा। क्योंकि यह जानकर आप हैरान होंगे कि सपनों के सम्बन्ध में जितनी जानकारी बढ़ी है उतना ही प्रतीत हुआ है कि चित्त के भीतर भी वेव्ज़ (तरंगें) हैं। सपना चलता है तो तरंगें और तरह की होती हैं, जब सपना बंद होता है तो और ही तरह की तरंगें मस्तिष्क में होती हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि गहरी नींद में जो तरंगों की स्थिति होती है वही स्थिति ध्यान में भी तरंगों की होती है।



**ध्यान में जब कोई व्यक्ति होता है तो उसके मस्तिष्क की तरंगें वैसी ही होती हैं जैसी तरंगें गहरी निद्रा में होती हैं।** और जब कोई व्यक्ति सपने में होता है तो तरंगें वैसी ही होती हैं जैसे जब कोई व्यक्ति चिन्ता में होता है। **चिन्ता और सपनों का जोड़ है। गहरी निद्रा और ध्यान का जोड़ है।**

यह सारी वैज्ञानिक व्यवस्था इस ध्यान मंदिर में करने का खयाल है। और प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक विधि से सहायता पहुंचाई जा सके यह दृष्टि है। और मेरे देखे **आज मनुष्य को ध्यान की जितनी जरूरत है उतनी किसी और चीज की जरूरत नहीं है,** क्योंकि आज मनुष्य जितना अशांत है उतना मनुष्य अशांत कभी भी नहीं था।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं, इन्हें सोचना विचारना। इन्हें मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। और **यह ध्यान मंदिर विश्वास करने वालों के लिए नहीं होगा, प्रयोग करने वालों के लिए होगा।** विश्वास करने वालों के लिए वैसे भी अब कहीं नहीं है। सिर्फ कहते हुए दिखाई पड़ते हैं लोग, कहीं कोई विश्वास करने वाला आदमी अब नहीं है ! हर आदमी के रथ पर शल्य बैठा हुआ है। एक छोटी-सी कहानी और बात पूरी कर दूं।

कर्ण ने महाभारत के युद्ध में जिस आदमी को सारथी चुना वही उसकी हार का कारण बना। कर्ण ने जिस आदमी को सारथी चुना उसका नाम था शल्य। शल्य का अर्थ होता है—संदेह, शंका, संशय। अब कर्ण का अर्थ तो आप जानते ही हैं। कर्ण का अर्थ होता है कान। **सब शंकायें कान से प्रवेश करती हैं।** शल्य को कर्ण ने सारथी चुन लिया और अर्जुन ने कृष्ण को सारथी चुना। सारे युद्ध के लिए निर्णायक (डिसीसिव) यही बात हो गई। क्योंकि वह शल्य जो था उसका नाम शल्य इसीलिए था कि वह बड़ा शंकालु आदमी था। कर्ण बहुत शक्तिशाली आदमी था। जो लोग जानते हैं और महाभारत जिनके सामने हुआ उन सबका खयाल था कि कर्ण से अर्जुन जीत न सकेगा। कर्ण महा-शक्तिशाली था। कर्ण के पीछे सूर्य की शक्ति थी, अर्जुन उससे जीत न पाता। लेकिन अंततः युद्ध में हुआ ऐसा कि अर्जुन जीता और कर्ण हारा। और जो जानते हैं वे कहते हैं कि गलत सारथी को चुनने के कारण ही कर्ण हारा। क्योंकि वह जो शल्य था वह पूरे वक्त कर्ण को कहता रहा : अरे, तू क्या जीतेगा अर्जुन से ! शल्य पूरे वक्त उससे यही कहता रहा। कर्ण धनुष बाण खींच रहा है और शल्य, उसका सारथी कह रहा है : क्यों मेहनत कर रहा है ? तू क्या जीतेगा अर्जुन से ! तेरी जीत बहुत मुश्किल है। एक यह था

सारथी और एक कृष्ण था सारथी अर्जुन के पास कि अर्जुन गांडीव छोड़कर बैठ गया और कृष्ण ने पूरी गीता कही कि वह आदमी लड़े, क्योंकि कृष्ण ने कहा कि जो होना है वह पहले से निश्चित है, तुझे कुछ करना ही नहीं है। तू सिर्फ निमित्त है। यह जो शल्य मिल गया कर्ण को, यह जो शंका मिल गई कर्ण के मन को, वही उसे डुबाने वाली हो गई।

कोई पहचानता हो, न पहचानता हो संदेह आज हर आदमी के साथ खड़ा है। इसलिए जो विश्वास संदेह के आधार में प्रचारित किये गये थे वे अब काम के नहीं हैं। अब तो पहले शल्य की हत्या करनी पड़ेगी, तब कहीं व्यक्ति के भीतर की चेतना पर कोई परिणाम लाया जा सकता है। और इस शल्य की हत्या बिना विज्ञान के नहीं हो सकती। इसलिए मैं इस ध्यान केन्द्र में आपके शल्य की हत्या विज्ञान के द्वारा करना चाहता हूं।

विश्वास के माध्यम से अब ध्यान में प्रवेश नहीं होगा। मेरे यह कहने से कि आप मान लें, आप मानेंगे नहीं। मानने का अब कोई उपाय नहीं रहा। वह वक्त आ गया, वह समय बीत गया है जब लोग मान लेते थे। अब वह समय कभी भी नहीं लौट सकता। मनुष्य जाति का बचपन सदा के लिए खो गया है। अब आदमी प्रौढ़ है। और इस प्रौढ़ आदमी के पास जो संदेह है उस संदेह को अगर हम वैज्ञानिक प्रक्रिया से नष्ट न कर सके तो मनुष्य की जिन्दगी में हम कोई भी क्रांति लाने में सफल नहीं हो सकते।

इसलिए इस ध्यान मंदिर को मैं एक वैज्ञानिक मंदिर कहता हूं जहां हम धर्म को, ध्यान को वैज्ञानिक मार्ग से मनुष्य तक पहुंचाने का प्रयास कर सकते हैं।

●





# ध्यान-मंदिर

इधर मेरे मन में यह निरंतर चलता है कि देश के सारे प्रमुख नगरों में ध्यान केन्द्र हों। यहां हम इसकी चिंता नहीं कर रहे हैं कि क्या ठीक है, यहां हम इसकी चिंता कर रहे हैं कि कुछ लोग क्लेरिटी (स्पष्टता) को उपलब्ध हो रहे हैं और उनका मन शांत हो रहा है और चीजों को देखना शुरू कर रहे हैं कि चीजें कैसी हैं। न उनका पक्षपात काम कर रहा है, न उनके अपने कोई पूर्वाग्रह काम कर रहे हैं। उनके पास सिर्फ ठीक-ठीक देखने वाली दूरबीन है, उससे वे देखना शुरू कर रहे हैं। अगर मुल्क के सारे बड़े नगरों में हम थोड़ी छोटी-सी जमात भी चीजों को ठीक देखने वाले लोगों को पैदा कर सकें तो इस संक्रमण काल में उसके बहुमूल्य उपयोग होंगे। और मैं मानता हूं शायद वह सर्वाधिक मूल्यवान बात सिद्ध हो—इसलिए कि ठीक शांत चित्त के लिए हम हवा, भूमि और व्यवस्था दे सकें। इस व्यवस्था को देने में बहुत-सी बातें होंगी। जैसा ध्यान केन्द्र के लिए कहा, मेडिटेशन हॉल के लिए कहा। यह बहुत जरूरी है कि सारे बड़े नगरों में ऐसे भवन हों जो न हिन्दू के हों, न मुसलमान के हों, न ईसाई के—जो सभी मनुष्यों के लिए हों और जो भी वहां शांत होना चाहता है उसके लिए हों। उन भवनों में शांति के लिए सब तरह की व्यवस्था की जा सकती है। छोटे बच्चों के लिए वहां अलग व्यवस्था की जा सकती है, जो छोटे बच्चों को ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सके। और भी हजार उपाय किए जा सकते हैं।

अभी पूना में जिस घर में मेहमान था वहां वे दो पेंटिंग काफी खर्च करके ले आये थे। पेन्टिंग अच्छी भी थीं। उन्होंने मुझसे पूछा कि आप क्या कहते हैं? मैंने कहा, मैं कुछ नहीं कहूंगा। तुम इस पेन्टिंग के पास आधे घंटे बैठकर आधे घंटे देखते रहो और तब तुम्हारा मन कैसा होता, वह मुझे बता दो। आधा घंटा तो बहुत दूर था, पांच मिनिट भी उस पेन्टिंग का गौर से देखने में आपका सिर घूमने लगेगा और ऐसा लगेगा कि आप पागलखाने में

हैं। आज कोई पश्चिम की पेन्टिंग उठाकर देखे तो उसे ऐसा लगेगा कि वह जरूर रुग्ण चित्त से पैदा हुई है। अगर पिकासो की एक पेन्टिंग पर थोड़ी देर कोई ध्यान करे तो वह पागल हो सकता है, शांत नहीं। लेकिन अगर बुद्ध की मूर्ति पर कोई पांच मिनिट बैठकर ध्यान करे, तो वह पागल भी हो तो शांत होकर लौटेगा।

मैं चाहता हूं कि ऐसे हाल होने चाहिए सारे मुल्क में, जिसमें **दरवेश फकीरों के नृत्य हों**, नाच तो हम रहे हैं और सारी दुनिया नाच रही है और दुनिया को नाचने से नहीं रोका जा सकता। जो कौम नाचने से रुकेगी उसको भारी नुकसान होने शुरू हो जायेंगे। लेकिन नाच ऐसा हो सकता है कि नाचने वाला नाचने में शांत हो, और ऐसा भी हो सकता है कि नाचने में अशांत हो। ऐसा नाच हो सकता है जो कामुकता से भर दे और ऐसा नाच हो सकता है जो कामुकता के बाहर कर दे। देखने वाला भी देखते-देखते कामुक हो सकता है। यानी नाच आपके भीतर कुछ करेगा। जो भी आप देख रहे हैं वह आपके भीतर कुछ करेगा। **दरवेश फकीरों के नृत्य हैं, अगर उनको कोई आधा घंटे तक देखता रहे, तो पायेगा कि सारे मन की चिन्ता विलीन हो गई है;** क्योंकि वह जो गति है वह इतने वैज्ञानिक हिसाब से निर्मित की गई है मानो आपके मन में थपकी देती हो, शान्त करती हो।

'मैडिटेशन हॉल' बहुत अर्थ रखता है। वहां हम इस तरह के **चित्रों की व्यवस्था करें** जिन्हें देखकर मन शांत हो, स्वस्थ हो; इस तरह के **नृत्यों की व्यवस्था** करें जिन्हें देखकर मन शांत होता हो, स्वस्थ होता हो। उस तरह के **गीत की, संगीत** की व्यवस्था करें, उस तरह का शिक्षक वहां पैदा हो, उस तरह का बच्चा भी वहां हो, बूढ़ा भी वहां हो, पति भी हो, पत्नी भी हो। **जीवन के सारे पहलुओं को हम वहां छूना शुरू करें।** पुरानी दुनिया ने भी बहुत से ध्यान भवन पैदा किये, लेकिन वे सब पलायनवादी थे। अगर कोई आदमी मंदिर में जाता हो तो वह जिन्दगी से भागना शुरू हो जायगा। **मैं ऐसे मंदिर चाहता हूं जो जिन्दगी में और गहराई में ले जाते हों, जिन्दगी से भागते न हों।** ऐसा केन्द्र जहां जीवन की सब दिशाओं को छूने के लिए और सब दिशाओं से काम करने के लिए और मनुष्य को सब तरफ शांति में डुबकी लगाने के लिये हम कोई व्यवस्था दे सकें। वह व्यवस्था दी जा सकती है उसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। जिस तरकीब से हमने आदमी को अशांत किया है, वह भी व्यवस्था है।



तो ध्यान केन्द्र चाहिए। पैसे की बात मैं नहीं जानता। इतना मैं जानता हूं कि इस तरह की व्यवस्था अगर जुटा पाते हैं आप, तो आप इस मुल्क की आने वाली समस्त पीढ़ियों के लिए कुछ काम कर सकेंगे, अपने लिए भी।

कुछ मूल्यवान चीजें हैं जिनका स्थायी परिणाम देश की चेतना पर हो सकता है। जैसे धर्म के नाम पर हमारे पास जो साहित्य है बिल्कुल कचरा है। उस साहित्य की वजह से, जिसमें थोड़ी भी बुद्धि है वह धार्मिक नहीं हो पायेगा। उस साहित्य को पढ़ने के लिए बुद्धिहीनता बहुत अनिवार्य आवश्यकता है। **ऐसा साहित्य चाहिए जो मुल्क की प्रतिभा को छुए और स्पर्श करे,** मुल्क की प्रतिभा जिसमें पाये कि कुछ रस हो सकता है। उस साहित्य के लिए भी ऐसे केन्द्र प्रचार और विस्तार के आधार बन सकते हैं।

अब हमारे पास बहुत नये साधन हैं जो कभी भी न थे, लेकिन उन साधनों का प्रयोग भी हम मनुष्य के मंगल के लिए नहीं कर पा रहे हैं। बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं था सिवाय इसके कि वे पैदल घूमें चालीस साल। इतनी बड़ी दुनिया थी, लेकिन चालीस साल पैदल बुद्ध घूमे तो भी बिहार के बाहर न जा सके। सिर्फ एक दफा बनारस तक गये। बुद्ध के पास उपाय नहीं थे। अगर मेरे जैसे आदमी को भी बुद्ध जैसे ही भटकना पड़े तो ढाई हजार साल बेकार गये। जब यह मामला है, तो बुद्ध जितना काम कर सके उससे ज्यादा मैं भी नहीं कर सकूंगा। लेकिन ढाई हजार साल में जो सारी टेक्नोलॉजी विकसित हुई है उसका क्या मतलब है? उसका मतलब है कि फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में मैं नहीं गया हूं वहां भी मेरी बात पहुंच जाय। फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में हम नृत्य की वह व्यवस्था न कर सकें जो हमने बम्बई में की है, तो फिल्म उस नृत्य को वहां पहुंचा देगी। जरूरी नहीं है कि हम हर गांव में पेन्टिंग्स पहुंचा सकें, लेकिन बम्बई में जो हमने पेन्टिंग्स लगाये हैं अपने ध्यान कक्ष में, उनको पूरा मुल्क फिल्म के जरिये देख ले; पूरा मुल्क ही नहीं, पूरी दुनिया भी संबंधित हो जाय। रेडियो का माध्यम है, टेलिविजन का माध्यम है। अब हमारे पास ऐसे माध्यम हैं जिनका कि पुराना जगत् उपयोग ही नहीं कर सकता था। उसके पास नहीं थे, हमारे पास हैं। हम भी उपयोग कर रहे हैं लेकिन मंगल के लिए उपयोग नहीं हो रहा है, अमंगल के लिए उपयोग हो रहा है।

मुझे मिलते हैं लोग और कहते हैं, सिनेमा बन्द करो। बन्द करने का सवाल नहीं है। जो माध्यम जगत् में आ गया है वह बन्द नहीं **होगा। इस–**

लिए सवाल बन्द करने का नहीं है, सवाल उसके उपयोग का है कि उसका कैसे उपयोग हो। **सिनेमा जैसी शक्तिशाली चीज का एकदम ही गलत उपयोग हो** रहा है। हमने कहावत सुनी है कि जब भी कोई आविष्कार होता है शैतान सबसे पहले उस पर कब्जा कर लेता है और जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं, वे खड़े देखते रहते हैं। वे लोग चिल्ला रहे हैं कि बड़ा बुरा हुआ जा रहा है। लेकिन तुमको कौन रोक रहा है कि तुम उस पर कब्जा मत कर लो। लेकिन वे साधु सम्मेलन करके तय करते रहेंगे कि रद्दी पोस्टर नहीं लगने चाहिए। लेकिन अच्छा पोस्टर लगाने से तुमको कौन रोक रहा है ? तुम इतना **अच्छा पोस्टर** क्यों नहीं लगा पा रहे हो कि रद्दी पोस्टर अपने आप उखड़ जायँ और उसे कोई देखने न आये। लेकिन उनकी फिक्र है कि रद्दी पोस्टर नहीं होने चाहिए। वे चिल्लायेंगे कि रद्दी फिलम नहीं होना चाहिए। लेकिन तुम्हें **अच्छी फिल्म** बनाने से कौन रोक रहा है ? लेकिन वह तुम्हारी कल्पना में नहीं आ रहा।

हम सोच ही नहीं सकते कि बुद्ध जैसा आदमी अगर फिल्म में खड़ा किया सके तो उसके क्या परिणाम होंगे। अगर बुद्ध बोल सकते हैं, चल सकते हैं तो बुद्ध का बोलना-चलना हम फिलम के द्वारा क्यों नहीं देख सकते ? सारा मुल्क देख सकता है। लेकिन बुरा आदमी सबसे पहले कब्जा कर लेता है और अच्छा आदमी सिर्फ चिल्लाता रहता है। अच्छा आदमी सदा से नपुंसक है। वह करता कभी कुछ नहीं है, वह इतना ही कहता है कि बुरा हो रहा है। मेरी समझ में **अच्छे आदमी को वीर्यशाली बनाने की जरूरत है**। बुराई से जो लड़ाई है वह बातचीत से नहीं हो सकती। जिन-जिन माध्यमों का बुरा उपयोग हो रहा है उन-उन माध्यमों का भला उपयोग करना चाहिए।

अभी मैं हैरान हूं। अब मैं जाऊंगा, एक-एक गांव घूमूंगा। एक-एक गांव में अगर मैं जाऊं और दस हजार लोग भी मुझे सुनें तो यह समुद्र में रंग घोलने जैसा है। मैं जिन्दगी भर मेहनत भी करूं तो भी इस मुल्क के पचास करोड़ लोगों के आमने-सामने नहीं हो सकता हूं। अब कोई वजह नहीं है कि आमने-सामने क्यों न हो सकूं ? **नवीनतम टेक्नोलॉजी का, साइंस का, धर्म कैसे उपयोग करे इस सम्बन्ध में न केवल चिंतन बल्कि व्यवस्था जुटाने की बात है**। तो पन्द्रह लाख तो बहुत छोटी बात है, उसे तो शुरू मानकर चलना चाहिए, किन्तु अगर इसका उपयोग हो सके तो बड़ा क्रांतिकारी काम हो सकता है।



बच्चे फिलम देख रहे हैं, उनको आप मना कर रहे हैं। मैं नहीं मानता कि उनको मना करने की जरूरत है। उनको जरूर फिलम दिखानी चाहिए। कोई कारण नहीं कि ऐसी फिलम बच्चे क्यों नहीं देखें जो उनकी जिन्दगी में रोशनी बनकर आये। आ सकती है। ऐसा गीत क्यों न गायें, जरूर वे गा सकते हैं। मैं मानता हूं कि बच्चों को नर्तक होना ही चाहिए क्योंकि जो बच्चा नाच नहीं सकता वह बूढ़ा हो गया। मगर हम चिल्लायेंगे कि यह नाच ठीक नहीं है। लेकिन ठीक नाच कहां है ? या तो नाच है ही नहीं, या गलत नाच है। उन दोनों में तो गलत नाच ही चुना जायगा। ठीक नाच कहां है ? **वह ठीक नाच सामने ले आइए, गलत नाच अपने आप विदा होने लगेगा।**

**मेरा मानना है कि भलाई अभी तक आकर्षक नहीं हो पायी**, अभी भी बुराई आकर्षक है। यह आश्चर्य की बात है कि बुराई इतनी आकर्षक है और भलाई में कोई आकर्षण नहीं है ! आदमी जब मरने लगता है तब वह मंदिर की तरफ जाता है अन्यथा वह नहीं जाता है। हां, एक फिलम टॉकीज 'मराठा मंदिर' है, वहां जाता हो, तो बात अलग है। जब वह थकने लगता है और हारने लगता है तब कहीं धर्म उसको आकर्षक मालूम पड़ता है। यानी अब तक सारा धर्म मरे हुए आदमियों को आकर्षित करता है, जिन्दा आदमी को नहीं आकर्षित करता है। **तो मैं ऐसे केन्द्र बनाना चाहता हूं जहां से हम जीवन की सब विधाओं को स्पर्श करने लगें, तो हम दस पन्द्रह वर्षों में एक नये समाज के जन्म के लिए कुछ नये आधार रख सकते हैं।** इधर दस वर्षों से मैं निरंतर बोल रहा हूं, सब तरह के लोग मेरी नजर में हैं। कौन क्या-क्या कर सकते हैं, वह सब मेरे ध्यान में है।

मैं एक जंगल में ठहरा हुआ था। एक मूर्तिकार जो कभी बहुत प्रसिद्ध था लेकिन दुनिया से परेशान होकर, जाकर जंगल में रहने लगा। वह इस समय दुनिया में दस पांच अच्छे मूर्तिकारों में है लेकिन उसके पास मूर्ति बनाने के लिए पैसे नहीं हैं। उसके पास सीमेंट नहीं है, क्रांक्रीट नहीं है जिससे वह मूर्ति बना ले। उसने मुझसे कहा, मैं जिस तालाब के पास हूं उसके चारों तरफ ऐसी मूर्तियां बना देना चाहता हूं और उसने अपने सारे नक्शे मुझे बताए। वह इतना अद्भुत है लेकिन उसके पास पैसे नहीं हैं। मैंने उससे कहा, जब मैं कोई केन्द्र खड़ा करूं, तुम आ जाओ और उसके चारों तरफ ऐसी मूर्तियां फैला दो। उसने कहा, कि सारी जिन्दगी वहां लगा दूंगा क्योंकि मुझे और कोई काम नहीं है। मुझे रोटी मिल जाय उसके बाद मुझसे कोई काम ले सारी जिंदगी।

मूर्तिकार हैं, संगीतज्ञ हैं, लेकिन वही संगीत बाजार में बिकेगा जो रद्दी होगा, क्योंकि रद्दी आदमी ही सिर्फ खरीदने वाला है। धीरे-धीरे वह संगीतज्ञ रद्दी संगीत बेचने लगेगा क्योंकि बाजार में मूल्य उसका है। हमारे पास एक ऐसी व्यवस्था चाहिए, मुल्क के प्रत्येक बड़े नगर में जहां हम श्रेष्ठतम को पनपने के लिए, खिलने के लिए मौका दे सकें; चाहे जितनी छोटी मात्रा में हम श्रेष्ठ को जन्म दे सकें।

ध्यान बहुत सी चीजों का इकट्ठा जोड़ है। ध्यान कोई एक चीज नहीं है कि एक आदमी चौबीस घंटे कुछ भी रहे और बस एक दफा ध्यान में चला जाय। मेरी समझ है कि अगर किसी आदमी को ध्यान में जाना है तो उसके घर की दीवालों में रंग की बदलाहट होनी चाहिए। क्योंकि दीवालों का रंग ऐसा हो सकता है जो कभी ध्यान में जाने ही न दे। अगर आपने लाल, काले और पीले रंग से दीवालें पोत डालीं तो उनके भीतर आप पांच मिनट बैठकर आंख बन्द करेंगे और बेचैन हो जायेंगे। इसलिए कैसे कपड़े पहनेंगे, यह भी अर्थपूर्ण है, क्योंकि हम जीते बहुत शरीर के तल पर हैं। आत्मा वगैरह की तो बात होती है, जीते शरीर के तल पर हैं।

ये जो केन्द्र होंगे ये जीवन की सब दिशाओं में खोज करें, अन्वेषण करें—कपड़े कैसे हों, दीवाल के रंग कैसे हों, मकान कैसा हो, मकान के पास दरख्त कैसे हों? सारी चीजों के संबंध में स्पर्श करने की जरूरत है। और जब इन सब पर स्पर्श हो तो मैं जानता हूं कि ध्यान इतनी सरल चीज है जितनी कोई और चीज सरल नहीं है। शायद उसे अलग से करने की जरूरत न रह जाय। अगर भोजन कैसा हो, कपड़े कैसे हों, मकान कैसा हो, बगीचा कैसा हो, उठते लोग कैसे हों, बैठते लोग कैसे हों, बात कैसे करते हों—अगर इन सारी बातों के संबंध में एक बात स्मरण रख ली जाय कि कौन सी बात शांति की तरफ ले जाने वाली है तो जरूरी नहीं कि उस आदमी को और अलग से ध्यान करने जाना पड़े। यह सब ही उसके भीतर ध्यान का सूत्र बन जायगा। अभी तो मैं जिनके ध्यान की बात कर रहा हूं वे बिल्कुल ही गलत लोग हैं, क्योंकि वे जिस दुनिया के हैं उनसे इसका कोई संबंध नहीं है। लेकिन उनको सुझाव देने का भी सवाल है—वह भी तो नहीं है उनके पास। वह कर भी क्या सकते हैं!

एक पूरा दर्शन तो है मेरे दिमाग में। जिनको भी ठीक लगता हो वे थोड़ी ताकत लगायें तो पूरा हो जाय। मुझे कोई परेशानी नहीं होगी।



जितना मैं कर सकता हूं, करता चला जाता हूं, उसमें कोई अन्तर नहीं है। अब मेरे खयाल से कुछ लोग हैं जिनको मैं कहीं बिठा सकता हूं जो कि बड़े काम के हो सकते हैं। लेकिन मैं कहीं बैठ नहीं सकता। मेरा कहीं बैठना तो महंगी बात है। मैं चलता रहूंगा। पर कुछ लोगों को कहीं बिठाया जा सकता है जो कि बड़े काम के सिद्ध हो जायं, पर उनके बिठाने के लिए भी कोई उपाय और व्यवस्था चाहिए। वह आपको सोचना चाहिए और एक बंबई से शुरुआत करें। बंबई में एक माडल की तरह खड़ा कर लें, फिर हम देश के और नगरों में उसकी चिन्ता लें।

जो भी महत्वपूर्ण है वह बहुत धीरे-धीरे प्रभावी होता है, वक्त लेता है। मौसमी फूल हम बोते हैं तो वह महीने भर बाद फूल भी देने लगते हैं और दो महीने बाद समाप्त हो जाते हैं। यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है कि आज हो जायगी। इसलिए मुझे लगता है कि अक्सर इसीलिए काम नहीं हो पाता, क्योंकि हमारी आकांक्षाएं बहुत मौसमी होती हैं। हम चाहते हैं कि अभी हो जायं। वह अभी नहीं हो पातीं तो फिर हम थक कर लौट जाते हैं कि अभी नहीं हो सकतीं। यह तो लम्बी यात्रा है और ऐसी यात्रा है जिसका अन्त कहीं भी नहीं होता है। हम उसे सिर्फ धक्का दे जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। फिर कोई और धक्का दे जाता है और समाप्त हो जाता है। यात्रा चलती रहती है, यात्रा अनन्त है। पर एक ही ध्यान अगर आदमी को जिन्दगी में रह जाय कि उसने मनुष्य के आनन्द की तरफ मनुष्य के मंगल की तरफ कुछ भी धक्का दे दिया था, तो भी मैं मानता हूं कि वह आदमी बहुत शांत अनुभव करेगा। लेकिन अगर हमने यह नहीं किया तो ध्यान रहे, यह नहीं हो सकता कि आप खाली रह जायें, धक्के तो आप दे ही रहे हैं, तब आप अशांति की तरफ देंगे, अमंगल की तरफ देंगे। आप जी रहे हैं, तो आपके धक्के तो जीवन को लगेंगे ही। अब सवाल इतना ही है कि धक्के किस तरफ ले जाते हैं और कहां ले जाते हैं—आदमी को मंगल की तरफ ले जाते हैं, शुभ की तरफ, आनन्द की तरफ? इससे बड़ी कृतार्थता नहीं हो सकती कि एक आदमी अपने जीवन में सबके मंगल के लिए कुछ कर पाये।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जब तुम ध्यान भी करो तो कभी ऐसा मत सोचना कि ध्यान से जो शांति मिलेगी वह मुझे मिल जाय, नहीं तो तुम कभी भी शांत न हो सकोगे, क्योंकि 'मुझे' का भाव भी अशांति है। बुद्ध कहते कि जब तुम्हें ध्यान से शांति मिलती हो तो तुम यह भी प्रार्थना

करना कि सबको बंट जाय। यह मत सोच लेना कि मुझे मिल जाय, क्योंकि मुझे मिलने का जो खयाल है वह भी अशांति का बुनियादी आधार है। वह बंट जाय, वह सबको मिल जाय। तो बुद्ध कहते हैं, ध्यान करते वक्त, बैठते वक्त कहना कि जो शांति आये वह सब में बंट जाय और वह सब तक दूर-दूर तक फैल जाय। उसमें मेरे 'मैं' को रखना ही मत। अगर ध्यान से उठना और शांति अनुभव हो, तो यही प्रार्थना करते उठना कि यह शांति सब तक फैल जाय। और बड़े मजे की बात है, जो अपने तक रोकना चाहता है वह सब तक तो फैला नहीं पाता, अपने तक भी पहुंचा नहीं पाता। और जो सब तक फैलाना चाहता है वह सब तक तो फैला देता है और अचानक पाता है कि सब तक फैलाने में उस तक तो शांति बहुत फैल ही गयी है।

●●●

# ध्यान: एक वैज्ञानिक दृष्टि

भगवान रजनीश